

एक कठोर हाथ

भारत की पुलिस द्वारा बल प्रयोग

हमारे देश में ऐसी कई परिस्थितियों की मिसालें मिल जाएंगी जिसमें पुलिस द्वारा किए गए बल प्रयोग को जायज मान लिया जाता है। दरअसल, एक लोकतांत्रिक समाज में भी पुलिस को नागरिकों पर दबाव डालने के लिए बल प्रयोग करने का कानूनी अधिकार प्राप्त है (क्लोकर्स, 1985)। चूंकि पुलिस इस बल का अनुचित प्रयोग भी कर सकती है, इसलिए ये अत्यंत आवश्यक है कि बल का कम-से-कम प्रयोग किया जाए और बलप्रयोग को प्रश्रय देनेवाले अफसरों को उत्तरदायी भी बनाया जाए।

भारत में तकरीबन 24 लाख महिलाएं और पुरुष पुलिस में हैं (आईआईएसएस, 2011; एनसीआरबी, 2011)। उनका काम भारतीय संविधान और कानून के तहत आता है, और आंतरिक नियमों और प्रक्रियाओं द्वारा बल के प्रयोग को नियमित किया गया है जिससे कुछ खास परिस्थितियों में ही आधिकारिक रूप से बल का इस्तेमाल किया जा सकता है। लेकिन भारत के राष्ट्रीय एजेंडे में पुलिस सुधारों की आवश्यकता को बढ़ाए जाने पर लगातार सहमति बन रही है।

इस इश्यू ब्रीफ के कुछ अहम निष्कर्ष इस प्रकार हैं:

- हिंसा और उनके प्रभुत्व को मिलने वाली चुनौतियों से निपटने के लिए पुलिस पूरी तरह प्रशिक्षित नहीं है। उनकी तनखाह और सुविधाएं कम हैं, जिससे भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है।
- 2004 में हुई पुलिस फायरिंग की घटनाएं 791 थीं जो 2010 में बढ़कर 1,421 हो गईं। इन घटनाओं में मारे

जाने वाले नागरिकों की संख्या में जरूर कमी आई, लेकिन क्षति की संख्या बढ़ी।

- भारत के कानून के तहत पुलिस अफसरों को गिरफ्तारी की विशेष विवेकगत शक्तियां दी गई हैं।
- वैसे तो पुलिस हिंसा और अत्याचार पर स्वतंत्र आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन बल का नियमित इस्तेमाल मुठभेड़ मौत की घटनाओं में दिखाई देता है – जो पुलिस के अनुचित आचरण का गंभीर लक्षण है।
- पुलिस द्वारा बल प्रयोग के गलत इस्तेमाल पर नियंत्रण के लिए सबसे महत्वपूर्ण सुधार 1993 राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग से आए।

- जबतक अपराध संबंधी न्याय व्यवस्था में बड़े सुधार नहीं किए जाएंगे तबतक पुलिस द्वारा अत्यधिक बल प्रयोग की घटनाओं में कमी नहीं आएगी।

कोई भी लोकतांत्रिक समाज पुलिस द्वारा पुलिस के लिए संरक्षण की आवश्यकता पर अलग-अलग स्तरों पर तनाव महसूस करता है। शांति व्यवस्था और आजादी, दोनों आवश्यक हैं। एक सत्तावादी समाज स्वतंत्रता के बगैर भी लगभग संपूर्ण शांति व्यवस्था हासिल कर सकता है, लेकिन बिना किसी तरह के नियम पर अमल किए पूरी तरह आजादी पाना असंभव है। लोकतांत्रिक समाज अराजकता और दमन की पराकाष्ठा से बचने की हरसंभव कोशिश करता है (मैनिंग, 2010)। भारत में भी पुलिस के सामने यही चुनौती है।



अप्रैल 2012 में श्रीनगर में अज्ञात बंदूकधारियों की गोली से शहीद हुए पुलिस अधिकारी की ससम्मान विदाई

© तौसीफ मुस्तफा/एएफपी फोटो

भारत के शासन में शांति व्यवस्था बनाए रखने के लिए प्रतिरोधी पुलिस व्यवस्था लगातार बरकरार रही है (राय, 1999)। असंतुलित आर्थिक विकास की वजह से उपेक्षा, प्रतिरोध और अन्याय जैसी भावनाएं पैदा होती हैं, जिसकी वजह से लोग विरोध के लिए सड़कों पर उतरते हैं। सरकारी नीतियों के खिलाफ प्रदर्शन, विकास की परियोजनाओं के खिलाफ रैलियां, और धर्म और जाति से जुड़े नियमित दंगों की वजह से पुलिस से लगातार मुकाबले होते रहे (शाह, 2002, पृ. 18; वर्मा, 2007)। एक प्रतिष्ठित विद्वान ने एक बार इसे 'शासन-प्रणाली का संकट' बताया था (कोहली, 1990)। बीस साल बाद भी बहुत कम बदलाव आए हैं। भारतीय पुलिस के लिए देश की स्थिरता बनाए रखने के लिए शासन व्यवस्था को बनाए रखना समाज सेवा से ज्यादा बड़ा है। जैसा कि पिछले अध्ययन में भी निष्कर्ष निकाला गया, 'देश में असैनिक पुलिस बल का आदर्श (अभी तक) हासिल नहीं किया जा सका है' (दास और वर्मा, 1998, पृ. 365)।

कानून प्रवर्तन का कानूनी आधार

सैकड़ों सालों तक भारत पर राज कर रहे ब्रिटिश शासकों को इस बात का डर सताता रहा कि इतनी बड़ी आबादी वाला देश कभी उनका आधिपत्य स्वीकार नहीं करेगा। तब से ही भीड़ द्वारा किया जानेवाला विरोध-प्रदर्शन भारतीय शासन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है। अंग्रेजी शासन के लिए 1857 के गदर के बाद सत्ता को खो देने का खतरा उनपर हावी हो गया, इसलिए 1861 में ब्रिटिश राज को बनाए रखने के लिए पुलिस कानून बनाया गया।

1860 की भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) में अंग्रेजों ने उपद्रवी भीड़ पर नियंत्रण के लिए पुलिस द्वारा कार्रवाई के लिए कुछ प्रावधान सुनिश्चित किए। तब परिभाषित की गई गैरकानूनी तरीके से जमा हुई भीड़ के लिए 1898 की भारतीय दंड संहिता की धारा 129 में भीड़ को तितर-बितर करने प्रावधान बनाया गया (रतनलाल और धीरजलाल, 2006)। आईपीसी की धारा 268 के तहत किसी भी ऐसे काम को सार्वजनिक उत्पात माना

जाता है जिससे 'किसी भी सार्वजनिक अधिकार के तहत जमा हुए लोगों के लिए चोट, अवरोध खतरा या मुसीबत की स्थिति पैदा करता है।' इसके साथ, भारतीय दंड संहिता की धारा 143 एक कार्यकारी मजिस्ट्रेट को ऐसी परिस्थियों के दुहराव या उसे जारी रखने पर पाबंदी लगाने का अधिकार प्रदान करती है। दंडविधान संहिता की धारा 144 में ऐसे किसी भी काम पर प्रतिबंध रहता है जिससे 'सार्वजनिक शांति में विघ्न पड़ता हो, या दंगे या हंगामे की स्थिति बनती हो' (रतनलाल और धीरजलाल, 2006)। इस तरह, इन कानूनी प्रावधानों ने पुलिस को कई शक्तियां दे रखी हैं जिनमें व्यवस्था बनाए रखने के लिए किसी भी अनधिकृत जमावड़े को छितराने के लिए बल प्रयोग किया जा सकता है।

भारतीय कानून में पुलिस अफसरों को गिरफ्तारी की असाधारण विशेष शक्तियां दी गई हैं। उदाहरण के लिए, दंडविधान संहिता के अंतर्गत पुलिस को गिरफ्तारी की सार्वलौकिक शक्तियां दी गई हैं (रतनलाल और धीरजलाल, 2006)। धारा 41 के अनुसार अगर किसी पर 'संज्ञेय अपराध' का शक हो तो एक पुलिस अफसर किसी को बिना वॉरंट के गिरफ्तार कर सकता है। दंडविधान संहिता की धारा 54 के अनुसार:

बिना किसी वॉरंट के... कोई पुलिस अफसर गिरफ्तार कर सकता है... यदि किसी व्यक्ति पर किसी संज्ञेय अपराध का यथोचित शक है... (या) जिसके पास कोई ऐसी वस्तु पाई गई है... जो चुराई हुई होने के शक के दायरे में आती है।

इस प्रकार कानून गिरफ्तारी का पूरा दारोमदार पुलिस अफसर की समझ पर छोड़ देता है। 'यथोचित शक' क्या है, ये ठीक-ठीक नहीं बताया गया और इसे 'किसी खास मामले की परिस्थितियों पर निर्भर छोड़ दिया गया है' (एआईआर 1950)। आगे, दंडविधान संहिता के खंड में इस कार्य स्वाधीनता को और विस्तार दिया गया है और कहा गया है कि इस खंड के तहत किसी अफसर को गिरफ्तारी के लिए किसी औपचारिक शिकायत की आवश्यकता नहीं है (वर्मा, 1997)। ये भी जरूरी नहीं कि गिरफ्तारी से पहले कोई अपराध हुआ हो। पुलिस को निवारक

गिरफ्तारियां (प्रिवेंटिव अरेस्ट) करने का भी अधिकार है जिससे भविष्य में होने वाले उन अपराधियों पर रोक लगाई जा सके जिनपर शक है। दंडविधान संहिता की धारा 151 के तहत:

एक पुलिस अफसर... जिसे किसी संज्ञेय अपराध की योजना की जानकारी हो... या उस व्यक्ति की जानकारी हो जो ये योजना बना रहा है, और ऐसा लगे कि किसी और तरीके से अपराध को रोका नहीं जा सकता तो वह उस व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता है।

इसके अलावा, अदालतों ने ये स्वीकार किया है कि:

यह माननीय न्यायालय के अधिकारक्षेत्र के लिए खुला नहीं है ... ये सवाल उठाना कि क्या वास्तव में पुलिस अधिकारी द्वारा इस खंड के तहत उठाया गया कदम उचित था या नहीं। इससे संबंधित विवेक पूरी तरह से पुलिस अधिकारी में निहित है और इस विवेक पर सवाल नहीं किया जा सकता है (गुप्ता, 1949)।

इस तरह ये फैसला कि किसी व्यक्ति ने अपराध किया है या नहीं, पूरी तरह संबंधित पुलिस अधिकारी पर छोड़ दिया जाता है (वर्मा, 1997, पृ.सं. 68-69)।

फिर भी, भारतीय अदालत पुलिस द्वारा बल प्रयोग के मामलों को लेकर सख्त रहे हैं। हालांकि कुछ लेखकों का ये भी कहना है कि अदालतें पुलिस से गैरवाजिब अपेक्षाएं रखती हैं:

यदि उन्होंने (पुलिस ने) कम बल का प्रयोग किया तो उनपर कर्तव्यच्युत होने का आरोप लगेगा, यदि वे घातक बल का प्रयोग करते हैं तो उनपर हत्या का आरोप लगेगा (आस्थाना एवं निर्मल, 2010)।

किसी अनियंत्रित भीड़ पर काबू पाने के लिए घातक बलों का प्रयोग कैसे किया जाए, करम सिंह बनाम हरदयाल सिंह (सीएलजे 1979, 1211) में ये निर्धारित किया गया है। अदालत ने कहा कि भीड़ को तितर-बितर करने के लिए बलप्रयोग करने का निर्णय लेने से पहले एक मजिस्ट्रेट को इन तीन आवश्यक शर्तों को अवश्य ध्यान में रखना होगा:

- पहला, एकत्रित भीड़ हिंसा करने के मकसद से जुटी हो या पांच या पांच से अधिक लोगों का जमावड़ा सार्वजनिक शांति में खलल डालने के

लिए हुआ हो।

- दूसरा, एक कार्यकारिणी मजिस्ट्रेट (एक्जेक्यूटिव मजिस्ट्रेट) ही भीड़ को हटाने का आदेश दे सकता है
- तीसरा, ऐसे आदेशों के बावजूद अगर भीड़ वहां से ना हटे तो

भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में राजनैतिक प्रदर्शनकारियों के खिलाफ बलप्रयोग वैसे भी विवादित हो जाता है। अक्सर मजिस्ट्रेट ही बलप्रयोग के आदेश देने से इंकार कर देते हैं (ब्युक, 2007)। ऐसी परिस्थितियों का पुलिस की कार्रवाई पर असर पड़ता है क्योंकि बहुत बड़ी भीड़ से पुलिस अधिकारी अक्सर अभिभूत हो जाया करते हैं। उदाहरण के लिए, राजस्थान में दो पुलिसवाले सरकार की आरक्षण नीति के खिलाफ विरोध-प्रदर्शन कर रहे गुज्जर समुदाय के लोगों की हिंसा का शिकार हुए। (सिफ़ी न्यूज़, 2008)।

हालांकि, कुछ पुलिस एजेंसियां, जैसे केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल (सीआईएसएफ), को बिना किसी वॉरन्ट के ऐसे लोगों को गिरफ्तार करने का

अधिकार है जो सार्वजनिक क्षेत्र की संपत्ति के खिलाफ किसी प्रकार के अपराध में लिप्त होते हैं। अर्धसैनिक बलों समेत सशस्त्र बलों के विशेषाधिकार कानून 1958 के तहत बिना वॉरन्ट गिरफ्तारी और गोलियां चलाकर मारने का दंडमुक्त व्यापक अधिकार है (वर्मा एवं सुब्रमनियम, 2009); एनसीएचआर, 2012, पृ. 10)। "अशांत क्षेत्रों" जैसे जम्मू-कश्मीर और पूर्वोत्तर राज्यों में ये कानून अभी भी प्रयोग में है, जिसमें 'अक्सर दंडमुक्ति मानवाधिकारों के उल्लंघन का कारण बनती हैं'। (एनएचआरसी, 2011, पृ. 2)

ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि पुलिस हिंसा का डर कम हुआ है। पुलिस पर अविश्वास अब भी एक बड़ा सार्वजनिक मुद्दा है। जैसा कि यहां दिखाया गया है, अदालतें और यहां तक की केन्द्र सरकार भी लगातार पुलिस की शक्तियों पर सवाल उठा रही है। उदाहरण के लिए, एक असाधारण मामले में, आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय ने पाया कि पुलिस कार्रवाई में हुई एक मौत के मामले में शामिल पुलिसवाले के खिलाफ हत्या का मामला

दर्ज किया गया। इससे उन्हें अपने बचाव का अधिकार भी नहीं मिल सका (रतनलाल और धीरजलाल, 2006)।

पुलिस प्रशासन

गृह मंत्रालय वह केन्द्रीय एजेंसी है जिसपर देश की आंतरिक सुरक्षा और कानून को अमली जामा पहनाने का दारोमदार है। लेकिन संविधान ने सार्वजनिक शांति और पुलिस को राज्य सूची की सातवीं अनुसूची में डाला है (भारत सरकार, 2010बी) – जिसमें राज्यों को पुलिसिंग की जिम्मेदारी दी गई है – जबकि केन्द्र सरकार पर बाहरी आक्रामकता और आंतरिक गड़बड़ियों से निपटने की जिम्मेदारी है। राज्य और केन्द्र सरकार, दोनों के पास कई तरह की सुरक्षा एजेंसियां हैं। चूंकि आंतरिक शांति को भौगोलिक दृष्टि से नहीं बांटा जा सकता, इसलिए केन्द्र सरकार केन्द्र और राज्य के स्तरों पर अहम नीतियों के निर्धारण में अहम भूमिका अदा करती है। संविधान की सातवीं अनुसूची की प्रथम सूची के संवैधानिक प्रावधान केन्द्र सरकार को आंतरिक सुरक्षा के लिए कानून



21 मई 2012 को नई दिल्ली में प्रदर्शनकारियों को नियंत्रित करती पुलिस

© सज्जाद हुसैन/एएफपी फोटो

व्यवस्था बनाए रखने के लिए विविध प्रकार के पुलिस बलों को तैयार करने की अनुमति प्रदान करते हैं (भारत सरकार, 2010 बी)।

विगत वर्षों में जांच, खुफिया, और विशिष्ट समूहों की समस्याओं के निपटारे के लिए विशेष पुलिस बलों को जोड़ा गया है। सभी 28 राज्यों के पास अपनी सशस्त्र पुलिस बटालियनें हैं जिन्हें अर्धसैनिक बलों की तरह व्यवस्थित किया गया है। जैसा बिहार में देखा गया है, कोशिश पुलिस के सैन्यीकरण की है, जहां ऐसी इकाईयों को बिहार मिलिट्री पुलिस का नाम दिया गया है। सिविल पुलिस में भी तथाकथित आरक्षित पुलिस बटालियन हैं, जो हर जिले में मौजूद हैं (वर्मा और सुब्रमनियम, 2009)।

पुलिस द्वारा बलप्रयोग के कारक

देश के कुछ हिस्सों में भारतीय पुलिस को बड़े स्तर पर दंगों और अशांति का सामना करना पड़ा है। धार्मिक, जातीय, क्षेत्रीय, भाषायी और वर्गीय अंतर के नाम पर कई बार हिंसा हुई है; राजनीतिक दल हड़तालें और बंद का आह्वान करने से नहीं चूकते (रीडिफ न्यूज, 2010)। उदाहरण के लिए कश्मीर में कई ऐसे अलगाववादी गुट हैं जो हिंसा के लिए लोगों को उकसाते हैं और पुलिस ने इसका जवाब उग्र भीड़ पर गोलियां चलाकर दिया है (स्वामी, 2010)।

नतीजतन, जम्मू और पूर्वोत्तर भारत समेत ये क्षेत्र अत्यधिक राज्य शक्ति का प्रतीक बन गया है (ओएससीएचआईआर, 2012)। उग्र भीड़ और हिंसक प्रदर्शन यहां इतने आम हैं कि लोग इसे भारतीय लोकतंत्र का पर्याय मानने लगे हैं (टेलीग्राफ, 2010)। ये सारी स्थितियां पुलिस द्वारा बारंबार बलप्रयोग का कारण बनती हैं। इसकी वजह से पुलिस के खिलाफ आम जनता का गुस्सा बढ़ता जाता है (कुमार और वर्मा, 2008)।

दंडमुक्ति की संस्कृति

जहां हर रोज पुलिस को अपने प्रभुत्व के खिलाफ टकरावों और चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, वहां उन्हें मिलनेवाली तनख्वाह और सुविधाएं बहुत कम हैं (वर्मा, 1999)।

बॉक्स 1 भारत की कानून प्रवर्तन एजेंसियां

भारत में कानून प्रवर्तन का मुख्य चेहरा पुलिस है। ये एजेंसी मुख्यतः पुलिस स्टेशनों में तैनात राज्य पुलिस बलों और सशस्त्र जिला पुलिस से मिलकर बनती है। 2010 में सिविल पुलिस में 12,23,319 पुलिसवाले कार्यरत थे। पिछले कुछ सालों में सिविल पुलिस की संख्या बढ़ी है, लेकिन बहाली में आनेवाली चुनौतियों की वजह से ये संख्या आधिकारिक संख्या से अभी भी कम है, जिसमें 16,18,198 तैनाती के बदले सिर्फ 75 प्रतिशत तैनाती ही हुई है। यही हाल देश की बाकी सशस्त्र पुलिस एजेंसियों का है। 2010 में इनकी संख्या 3,56,992 थी यानि 2009 से इसमें 4.2 प्रतिशत का इजाफा हुआ था, लेकिन 4,26,879 की आधिकारिक संख्या से ये संख्या अभी भी बहुत कम है (एनसीआरबी, 2011, पृ. 167)।

शैक्षणिक योग्यता और बुद्धिजीविता के लिहाज से भी पुलिसवालों की तैनाती एक बड़ी समस्या है। पुलिस नेतृत्व के उच्चतम स्तर पर भारतीय पुलिस सेवा (आईपीएस) के 4,720 अफसर मौजूद हैं (गृह मंत्रालय 2010, पृ. 131)। कठिन प्रतियोगिता परीक्षाओं से चुनकर आए ये अफसर विशिष्ट माने जाते हैं। लेकिन यही बात 12 लाख साधारण पुलिस कॉन्स्टेबलों के बारे में नहीं कही जा सकती, जो आमतौर पर शिक्षा और तनख्वाह दोनों के लिहाज से बेहद कमजोर माने जाते हैं।

पुलिसिंग का घनत्व देश के अलग-अलग क्षेत्रों में भी अलग-अलग है। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड्स ब्यूरो के अनुसार प्रति एक लाख की आबादी के लिए औसतन 133 पुलिसवाले हैं (एनसीआरबी, 2011, पृ. 171)। लेकिन इस राष्ट्रीय औसत से क्षेत्रीय विविधताओं का पता नहीं चलता। अलगाववाद से प्रभावित राज्यों, खासकर कश्मीर और पूर्वोत्तर राज्यों में पुलिस का फेलाव सबसे अधिक है; मिजोरम में प्रति एक लाख की आबादी पर 1,065 पुलिसवाले मौजूद हैं जबकि मणिपुर में ये अनुपात प्रति एक लाख पर 871 का है। गंभीर नक्सली समस्याओं वाले राज्यों में पुलिसवालों की संख्या बहुत कम है, जो आधिकारिक प्राथमिकताओं पर प्रकाश डालती है। ये दर बिहार में सबसे कम है, 2010 में प्रति लाख की आबादी के लिए सिर्फ 64 पुलिसवाले तैनात थे (एनसीआरबी, 2011, पृ. 168)।

सिविल पुलिस और सशस्त्र पुलिस के अलावा भारत के 28 राज्यों और 7 केन्द्रशासित प्रदेशों की अधिकार सीमा में कुल सात राष्ट्रीय पुलिस बल (सेन्ट्रल पुलिस फोर्स) शामिल हैं, जो गृह मंत्रालय के तहत आते हैं। रक्षा मंत्रालय और रेलवे की भी अपनी स्वतंत्र कानून प्रवर्तन एजेंसियां हैं। कुल मिलाकर भारत में कुल चौबीस लाख महिलाएं और पुरुष आधिकारिक तौर पर पुलिस की सेवा में तैनात हैं (नीचे तालिका देखें)।

एक कुल आकलन में सिविल डिफेंस रिजर्व ऑर्गनाइजेशन और होमगार्ड रिजर्व ऑर्गनाइजेशन को भी शामिल किया जाना चाहिए, जिनमें से पहली एजेंसी रक्षा मंत्रालय के तहत है और दूसरी गृह मंत्रालय के तहत। ये 5,00,000 स्वयंसेवियों के वैसे नागरिक समूह हैं जो राष्ट्रीय आपातकाल में सेना और पुलिस की मदद करते हैं (आईआईएसएस 2011, पृ. 242; बट्री-महाराज, 2001)।

(बॉक्स ऐरॉन कार्प द्वारा तैयार किया गया)

तालिका 1 भारत की मुख्य पुलिस एजेंसियां, 2010

स्रोत: आईआईएसएस, पृ.241-2, एनसीआरबी, 2011, पृ. 167-8

एजेंसी	मंत्रालय	संख्या
सिविल पुलिस	राज्य और नगरपालिका	12,23,319
सशस्त्र पुलिस	राज्य और नगरपालिका	3,56,992
असम राइफल्स	गृह मंत्रालय	63,883
सीमा सुरक्षा बल (बीएसएफ)	गृह मंत्रालय	2,08,422
केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल (सीआईएसएफ)	गृह मंत्रालय	94,347
केन्द्रीय सुरक्षा पुलिस बल (सीआरपीएफ)	गृह मंत्रालय	2,29,699
भारत-तिब्बत सीमा पुलिस (आईटीबीपी)	गृह मंत्रालय	36,324
राष्ट्रीय सुरक्षा गार्ड (एनएसजी)	गृह मंत्रालय	7,357
सशस्त्र सीमा बल (एसएसबी)	गृह मंत्रालय	31,554
रक्षा सुरक्षा कोर (डिफेंस सेक्योरिटी कोर)	रक्षा मंत्रालय	31,000
रेलवे सुरक्षा बल	रेलवे मंत्रालय	70,000
राष्ट्रीय राइफल्स	रक्षा मंत्रालय	65,000
कुल पुलिस कर्मचारी		24,17,897

किसी अनुशासनात्मक कार्यवाई के डर के बगैर मुफ्त भोजन और सुविधाओं का खुलेआम गैरवाजिब इस्तेमाल होता है।

इसके अलावा, पैसे के अभाव से जूझ रही राज्य सरकारें पर्याप्त संसाधन भी मुहैया नहीं करा पातीं। पुलिस के पास पर्याप्त

स्टेशन, गाड़ियां, संचार के उपकरण, और यहां तक कि जरूरी सुरक्षा कवच भी नहीं हैं। ग्रामीण इलाकों में खासकर सड़कों और संचार व्यवस्था के अभाव की वजह से पुलिस सुरक्षा और नहीं उपलब्ध कराई जा सकती। इसकी वजह से उग्रवादी पुलिस निगरानी से मुक्त खुलेआम घूम सकते हैं (मित्रा, 2007)। ये अलगाव, गरीबी और संचार का अभाव 'शॉर्टकट' रास्ते लेने का मार्ग प्रशस्त करता है।

पुलिस द्वारा बल प्रयोग एक ऐसी संगठनजन्य संस्कृति का हिस्सा है जहां इसके दुरुपयोग को बर्दाश्त किया और बढ़ावा दिया जाता है। भारतीय पुलिस बल को इस तरह तैयार किया गया था कि इसपर कोई स्थानीय जवाबदेही ना हो। ब्रिटीश राज में भारत पर 'जरूरत पड़ने पर निर्दयता से ताकत के प्रयोग' के बल पर शासन किया गया (गुप्ता, 1979, पृ. 3)। 1857 के गदर के ताजा जख्मों के साथ 1860 के पुलिस कमीशन में ब्रिटीश सरकार के अधीन भारत के लिए एक नई पुलिस व्यवस्था तैयार की गई। कमीशन को ध्यान में रखने को कहा गया कि 'पुलिस का काम या तो संरक्षात्मक था या फिर दमनकारी या गुप्तचरी' और 'एक नागरिक बल के संरक्षात्मक और दमनकारी कार्यों के बीच की रेखा शुद्ध रूप से सैन्यात्मक है या नहीं, भारत में हमेशा इसे पूरी तरह स्पष्ट नहीं किया जा सकता' (हंटर, 1907, पृ. 380)। ब्रिटीश राज में भारत में 'लोगों के लिए पुलिस' के अस्तित्व को कमतर आंका गया था।

नतीजतन ब्रिटीश शासन में संगठनजन्य संस्कृति और तरीकों में बिना किसी सवाल के प्रभुत्व पर जोर दिया गया और रैंकों में भी भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया गया। मौजूदा पुलिसिंग संस्कृति की जड़ें ब्रिटीश राज के तौर-तरीकों में खोज निकाली जा सकती हैं, जहां साहब और मेमसाहब विशालकाय बंगलों में अर्दलियों की जमात के साथ रहते थे (वर्मा, 1999, पृ. 271)। अंग्रेजों ने अस्पताल और स्कूल कम बनवाए लेकिन पुलिस के लिए इमारतें कई और प्रभावशाली बनवाई (मेटकाफ, 1994, पृ. 177-9)। सीनियर अफसरों का ताम-झाम उनके प्रभुत्व का सूचक था। सुबह होनेवाली परेड और सलामी, सशस्त्र गार्ड और पहरेदार अफसरों की प्रतिष्ठा बढ़ाया करते थे। इसके साथ ही,



31 मई 2012 को श्रीनगर के जवान पुलिस अकादमी में अपने प्रमुख कुलदीप खोडा के विदाई समारोह के लिए जमा हुए पुलिसकर्मी। एक स्थानीय अदालत ने तीन नागरिकों के रिश्तेदारों द्वारा दायर की गई याचिका को खारिज कर दिया, जिसमें खोडा पर न्यायेतर मौतों में शामिल होने का आरोप था। © तौसीफ मुस्तफा/एफपी फोटो

प्रशासन गिने-चुने अफसरों को लोगों के लिए फैसले देने की अनुमति देता था (ग्रिफिथ्स, 1971)। जहां प्रशासक कानून से बढ़कर हों, वहां उनके भ्रष्ट आचरण और निर्ममता के खिलाफ शिकायत की गुंजाईश ही नहीं थी। ये संगठनजन्य तरीका, प्रशासन का गैरजिम्मेदाराना रवैया और नागरिकों से जानबूझकर बढ़ाई गई दूरी ही पुलिस द्वारा बल के दुरुपयोग का कारण बनी।

लोगों की बजाए सत्ता को सेवाएं प्रदान करने पर जोर 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी चलता रहा। आज भी सभी पुलिस कर्मचारी नागरिक समुदायों से अलग-थलग बने रहते हैं। पुलिस की इमारतें अभी भी उतनी ही प्रभावशाली लगती हैं कि लगता है, उन्हें जनता की सेवा के लिए नहीं बल्कि उनसे दूरी बढ़ाने के लिए बनाया गया है (वर्मा और सुब्रमनियम, 2009)।

भारतीय पुलिस सेवा द्वारा पुलिस नेतृत्व प्रदान किया जाता है, जिनके हाथों में लाखों पुलिस कर्मचारियों के काम-काज, व्यवहार और बलप्रयोग की कमान है। आईपीएस में भी दंडमुक्ति की संस्कृति विकसित हो गई है (नेशनल प्रोजेक्ट ऑन प्रीवेंटिंग टॉर्चर इन इंडिया, 2008)। सैद्धांतिक तौर पर न्यायपालिका पुलिस कार्रवाई को नियंत्रित करती है, लेकिन

ये भी अब मुश्किल और अलग-थलग पड़ गई है। इसकी वजह से पुलिस कर्मचारियों की ठीक से निगरानी नहीं हो पाती और वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा जवाबदेही दिए जाने से ये बचते हैं।

अपर्याप्त प्रशिक्षण

पुलिस कर्मचारियों का प्रशिक्षण भी बहुत खराब हालत में है। इसके लिए ना कोई मानक तय हैं और ना प्रशिक्षक ही उपलब्ध हैं। कई प्रशिक्षण संस्थानों में तो मूलभूत सुविधाएं भी नहीं हैं। कुछ राज्यों, जैसे बिहार में, तो अभी तक कोई ट्रेनिंग अकादमी नहीं खोली जा सकती है। बाकी राज्यों के ट्रेनिंग संस्थानों पर भी ध्यान नहीं दिया जाता। बलप्रयोग, न्यायिक प्रक्रियाओं की जानकारी और जनता से बातचीत के तरीकों पर बहुत असंतोषप्रद और थोड़ी-बहुत ट्रेनिंग दी जाती है। पुलिस कर्मचारियों की मौजूदा ट्रेनिंग पर नागरिक समाज के प्रति उनकी जिम्मेदारियों से ज्यादा बल प्रयोग का प्रशिक्षण दिया जाता है (मुखर्जी, 2003)।

केन्द्रीय पुलिस बलों की ट्रेनिंग उच्च स्तर की है, इसलिए क्योंकि सीपीएफ के पास सेना की तरह बेहतर संसाधन हैं, जहां प्रशिक्षण पर जोर दिया जाता है। केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल ने राष्ट्रीय औद्योगिक सुरक्षा अकादमी की स्थापना की जहां औद्योगिक कानून और

मानवाधिकार समेत सुरक्षा में ट्रेनिंग की लिए सभी सुविधाएं उपलब्ध कराई गईं। इंटेलेजेंस प्रक्रियाओं, जटिल हथियारों के प्रयोग और इलेक्ट्रॉनिक्स में प्रशिक्षण भी दिया जाता है। एयरपोर्टों पर सुरक्षा बढ़ाने, संसद और अन्य संवेदनशील स्थानों पर सुरक्षा प्रदान करने के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम विकसित किए गए हैं।

इसी तरह, भारत-तिब्बत सीमा पुलिस अकादमी पारंपरिक युद्ध, इंटेलेजेंस, फील्ड इंजीनियरिंग, वीआईपी सेक्योरिटी, कमांडो ऑपरेशन्स और जवाबी कार्रवाई पर भी कोर्स करवाती है। ग्वालियर में सीमा सुरक्षा बल अकादमी (बीएसएफ) ने सीमा सुरक्षा और उसके प्रबंधन के साथ-साथ उग्रवाद के खिलाफ जवाबी कार्रवाई और मानव संसाधन विकास में भी दक्षता हासिल कर ली है। अकादमी ने पुनर्वास और पुनरुद्धार पर भी कोर्स विकसित किए हैं क्योंकि बीएसएफ को अक्सर बगावत और अशांत परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है (बीएसएफ, 2012)।

प्रशिक्षण के सिलेबस को और पेशेवर बनाया जा सकता है, लेकिन सिर्फ सिलेबस से ही उस रवैये को नहीं बदला जा सकता जो अतिरिक्त बलों में प्रोत्साहित किया जाता है (ऑस्टिन, 1999, पृ. 600)। बल्कि ट्रेनिंग का एक बड़ा नतीजा ये होता है कि पुलिस खुद को जनता के सेवक से ज्यादा राज्य का एजेंट समझती है। इस व्यवस्था में एक तरह का विरोधाभास है जहां ट्रेनिंग इस तरह दी जाती है कि कई बार लोगों के प्रति जवाबदेही के खिलाफ जाकर राज्य की सेवा करना सिखाया जाता है। संस्थागत रूप से पुलिस बहुत शक्तिशाली होती है और आम जनता खाकी वर्दी को डर से देखती है। जवाबदेही की कमी और असाधारण विवेकगत शक्तियां प्रभुत्व के दुरुपयोग को प्रोत्साहित करती है।

भारत में जबसे पुलिस है तबसे, इसकी शक्ति को कानून बनानेवाले और मजिस्ट्रेट भी पूरी तरह नियंत्रित नहीं कर पाए। अधिकांश पुलिसवाले अन्याय, भ्रष्टाचार और निर्ममता का साथ देते रहे (कुमार एवं वर्मा, 2008)। राज्य और केन्द्र, दोनों स्तरों पर सरकार की सशस्त्र शक्ति के

साथ उभरने वाली भारतीय पुलिस की पहचान प्राथमिक तौर पर गृह तनावों और कानून के उल्लंघन पर बलप्रयोग की शक्ति के तौर पर ही है।

पुलिस द्वारा घातक बल का प्रयोग

भारतीय पुलिस पर अक्सर अनावश्यक बलप्रयोग का आरोप लगता रहा है। ऐसे कई उदाहरण हैं जिनसे पता चलता है कि पुलिस के बारे में इस धारणा के पीछे कुछ-ना-कुछ कारण हैं। पुलिस के बलप्रयोग से जुड़े आधिकारिक आंकड़े एनसीआरबी द्वारा उपलब्ध कराए जाते हैं, जो पुलिस कर्मचारियों, अपराध, गिरफ्तारियों और पुलिस-जनता के अन्योन्यक्रिया पर प्रकाश डालता है। हालांकि, इन आंकड़ों के लिए एनसीआरबी विभिन्न राज्यों से मिलने वाली जानकारी पर निर्भर है और कई राज्य रिपोर्ट भेजने में या तो लापरवाही बरतते हैं या फिर देरी करते हैं। इनके तथ्यों की बहुत कम जांच होती है और इनमें कई बार असंगतियां दिखाई देती हैं। एनसीआरबी आंकड़ों पर इससे पहले के आईएवीए इश्यू ब्रीफ में विस्तार से चर्चा की गई है (कोहली, कार्प और मारवाह, 2011, पृ. 3)। फिर भी, एनसीआरबी ही पुलिस बल से जुड़े आंकड़े हासिल करने का इकलौता जरिया है।

ये संख्याएं दर्शाती हैं कि भारतीय पुलिस अक्सर घातक बल का इस्तेमाल करने का रास्ता अख्तियार करती है। बल्कि 'राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में दर्ज होनेवाली 35

तालिका 2 पुलिस फायरिंग और प्रभावित नागरिकों की संख्या, 2004-2010, एनसीआरबी को मिलनेवाली रिपोर्ट के अनुसार

वर्ष	कुल घटनाएं	मृतकों की संख्या	घायलों की संख्या
2004	791	420	257
2005	777	355	373
2006	1,363	472	432
2007	865	250	616
2008	1,529	317	758
2009	1,280	184	490
2010	1,421	239	713

स्रोत: एनसीआरबी, 2011, पृ. 135

प्रतिशत शिकायतें पुलिस के खिलाफ हैं। तालिका 2 में दिखाया गया है कि 2004 से 2010 में ऐसी कई जानलेवा घटनाएं हुई हैं, और घायलों की संख्या में भी वृद्धि हुई है, हालांकि इन घटनाओं में मृतकों की संख्या में कमी आई है।

जैसा कि तालिका 3 में दर्शाया गया है, एनसीआरबी ऐसी घटनाओं को पुलिस ऑपरेशन के तरीके से खंडित करता है।

तालिका 3 घटनाओं के आधार पर पुलिस फायरिंग 2004-2010, एनसीआरबी को मिलनेवाली रिपोर्ट के अनुसार

वर्ष	कार्रवाई	मृतक नागरिक	मृतक पुलिस कर्मी
2004	दंगे	26	1
	अपराध कार्रवाई	239	12
	उग्रवाद कार्रवाई	85	51
	अन्य	70	17
2005	दंगे	44	4
	अपराध कार्रवाई	78	1
	उग्रवाद कार्रवाई	166	36
	अन्य	67	4
2006	दंगे	41	7
	अपराध कार्रवाई	112	8
	उग्रवाद कार्रवाई	246	48
	अन्य	63	1
2007	दंगे	52	5
	अपराध कार्रवाई	90	12
	उग्रवाद कार्रवाई	54	42
	अन्य	54	0
2008	दंगे	77	3
	अपराध कार्रवाई	85	5
	उग्रवाद कार्रवाई	79	126
	अन्य	76	31
2009	दंगे	20	2
	अपराध कार्रवाई	57	6
	उग्रवाद कार्रवाई	44	97
	अन्य	63	26
2010	दंगे	97	2
	अपराध कार्रवाई	37	1
	उग्रवाद कार्रवाई	48	147
	अन्य	57	16

स्रोत: एनसीआरबी, 2011, पृ. 155

‘एनसीआरबी की ‘अन्य’ श्रेणी में ऐसी किसी घटना परिभाषित नहीं है जो इस श्रेणी में आती हो, लेकिन ये प्रासंगिक है क्योंकि इन घटनाओं में कई पुलिसवालों और नागरिकों की मौत हुई है।

शांति बनाए रखने और अपराध के खिलाफ किए जानेवाले ऑपरेशनों के नाम पर मारे जा रहे नागरिकों की संख्या बहुत बड़ी है। हालांकि ऐसे ऑपरेशनों में पुलिसकर्मियों की भी मौत होती है। ऐसी लगातार होनेवाली मौत चिंता का विषय है और इससे अशांति और अपराध से निपटने के पुलिस फोर्स के रवैए पर सवाल भी उठता है। उग्रवाद के खिलाफ होनेवाली कार्रवाइयों में मारे गए पुलिसकर्मियों की संख्या तस्वीर का दूसरा पहलू है – भारत पर आतंकवाद और सशस्त्र उग्रवादियों का भी खतरा है।

ऐसा कोई आंकड़ा नहीं जो पुलिसकर्मियों द्वारा अघातक हथियारों के इस्तेमाल पर प्रकाश डालता हो, लेकिन ये ध्यान देनेवाली बात है कि 2008 में दंगों की 66,018 घटनाएं दर्ज हुईं जिनमें तीन पुलिसकर्मियों की मौत हुई और 2,219 घायल हुए (एनसीआरबी, 2009, पृ. 59, 158)। पुलिस स्टेशन की डायरियों में आंतरिक प्रबंधन के लिए छोटी-छोटी घटनाएं भी दर्ज की जाती हैं जिन्हें बाहरवालों को उपलब्ध नहीं कराया जाता। दक्षिण भारत के एक छोटे से जिले में कराया गया एक अध्ययन एक और तथ्य को उजागर करता है। इस अध्ययन के मुताबिक मार्च 2003 से दिसंबर 2004 के बीच 2,000 से भी अधिक ऐसी घटनाएं हुईं जिनमें कानून व्यवस्था में खलल की संभावना थी। इनमें से पुलिस ने करीब 750 घटनाओं में दखलअंदाजी की और एक प्रतिशत से भी कम मामले में घातक बलों का इस्तेमाल हुआ (कुमार, 2009)।

बलप्रयोग की घटनाओं को दर्ज ना किया जाना अनधिकृत जबर्दस्ती के मामलों में एक बड़ी समस्या है। पैसे के लिए पुलिस द्वारा दुकानदारों और यहां तक कि मदद के लिए आए लोगों से रंगदारी मांगने की घटनाएं अक्सर सुनने में आती हैं। इन्हें ना कहीं दर्ज किया जाता है ना इनपर कोई कार्रवाई हो सकती है। कई बार तो पुलिसवालों की गैरवाजिब मांग पर ध्यान

तालिका 4 पुलिस हिरासत में होनेवाली मौत, 2006-2010, जैसा एनसीआरबी को रिपोर्ट किया गया

वर्ष	हिरासत में होनेवाली सभी मौत	आत्महत्या	भागने का प्रयास	अफसरों पर आरोप
2006	89	24	7	1
2007	118	31	7	7
2008	81	38	6	3
2009	84	21	8	12
2010	70	18	7	अनुपलब्ध

ना देने पर आम लोगों को सताया जाना भी आम है। मीडिया में जरूर ऐसे मामलों को उजागर किया जाता है। ‘आजकल के पुलिसवालों में जरूर एक किस्म की सुस्पष्ट अकड़ है और वे दिन-ब-दिन निर्दयी और निर्दय बल में तब्दील होते जा रहे हैं’ (टीओआई 2010)। इस बात पर बहुत कम लोग ही इंकार करेंगे कि पुलिस और अर्धसैनिक इकाइयों और अन्य कानून प्रवर्तन एजेंसियों द्वारा यंत्रणा का खुलेआम इस्तेमाल किया जाता है। पुलिस इसे जांच का अभिन्न हिस्सा मानती है, जिनमें अधिकांश यंत्रणा या धमकियों के डर से अपराध का सच स्वीकार लेते हैं (मोहन, 2008)।

ह्यूमन राइट्स वॉच ने भारतीय पुलिस द्वारा यंत्रणा और अनधिकृत बल के इस्तेमाल के कई सबूतों के होने का दावा किया है और निष्कर्ष निकाला है कि ‘देश की सबसे दृष्टिगोचर भुजा उतनी ही अराजक और अप्रभावी है जितनी दुनिया के बाकी पिछड़े हुए उत्तर औपनिवेशिक देशों में मौजूद है (एचआरडब्ल्यू, 2009, पृ. 5)।’ ऐसा माना जाता है कि फॉरेन्सिक सबूत इकट्ठा करने और गवाहों के बयान के बजाए पुलिस की कार्रवाई गैरकानूनी तरीके से करवाई गई स्वीकारोक्तियों पर निर्भर होती है। पुलिस अधिकारी एक ऐसे माहौल में काम करते हैं जहां ऐसे तौर-तरीकों को माफ कर दिया जाता है, और कई बार उन्हें हिंसा का रास्ता अख्तियार करने और मानवाधिकारों को नजरअंदाज करने पर मजबूर किया जाता है।

हालांकि तालिका 4 सिर्फ ऐसी रिपोर्टों को दर्शाती है जिन्हें खुद पुलिस ने तैयार किया है, और इन्हें अधूरा ही मान लिया जाना चाहिए, बावजूद इसके ये कई अप्रिय सवाल उठाती है। अफसरों पर

लगाए गए चार्ज की गिनती दिखाती है कि राज्यों द्वारा करवाई गई जांच पूरी नहीं है – या फिर अधिकारियों को इन घटनाओं की फिक्र नहीं है। हिरासत में होनेवाली मौत और अत्यधिक बलप्रयोग से हुई मौत के मामलों में ‘आपराधिक जांच और अपराधकर्ता के खिलाफ अभियोजन कभी कभार ही शुरू होता है’ (ओएचसीएचआर, 2012)। ‘पुलिस हिरासत से बचाव’ की कोशिश में की जानेवाली आत्महत्याएं और मौत भी उतनी है तकलीफदेह हैं। जहां आधिकारिक आंकड़े भी पुलिस की बर्बरता को प्रमाणित करते हैं, बाकी स्रोतों से पता चलता है कि इसकी वास्तविक संख्या बहुत अधिक है। जहां 2006 में पुलिस ने हिरासत में हुई मौतों के 38 मामले दर्ज किए, वहीं 1 अप्रैल 2006 से 31 मार्च 2007 के बीच राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में हिरासत में होनेवाली मौतों की 119, फर्जी मुठभेड़ों में मौत की 89 और गुमशुदगी की 15 शिकायतें मिलीं (एनएचआरसी, 2006-7, पृ. 296)।

कमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव (सीएचआरआई) ने भी पुलिस के गलत आचरण के बावजूद मिलनेवाली दंडमुक्ति की ओर ध्यान आकर्षित कराया है। शक्ति का दुरुपयोग, पक्षपात, भ्रष्टाचार, गैरकानूनी तरीके, और बल के अत्यधिक इस्तेमाल के मामले दर्ज किए भी जाएं तो ना उनपर कार्रवाई होती है ना सजा दी जाती है। शोषण के आम तरीके ‘मुठभेड़’ में मौत (नीचे देखें), जांच के दौरान अत्यधिक यंत्रणा, अनुचित गिरफ्तारियां, एफआईआर दर्ज करने के लिए मना करना, बेमतलब हिरासत में लेना, शिकायतें दर्ज करने और उनके जांच में अनिच्छा दिखाना, और फर्जी सबूत देना शामिल हैं (सीएचआरआई, 2011)।

मुठभेड़ में मौत

पुलिस द्वारा बलप्रयोग में सबसे चिंताजनक 'मुठभेड़ में होनेवाली मौत' (एक्स्ट्राज्युडिशियल किलिंग्स) है, जिसमें पुलिस किसी संदिग्ध व्यक्ति की हत्या कर दे और उसे स्व-रक्षा का नाम दे दे। ऐसी मौत लंबे समय से भारत के सामाजिक-राजनीतिक भूदृश्य का हिस्सा रही है। फर्जी मुठभेड़ ब्रिटिश शासन के दौरान भी हुए (सक्सेना, 1997), और आजादी के बाद भी। साठ के दशक में पुलिस के साथ 'मुठभेड़ों' में होनेवाली न्यायेतर मौतों को 'मुठभेड़ में मौत' का नाम दे दिया गया।

भारत में पुलिस मुठभेड़ों को आधिकारिक तौर पर स्वाभाविक दिखाया गया है, ऐसे शूटआउट जिनकी कोई योजना नहीं थी और जिसमें आरोपी अचानक ही मार डाला गया, और जिसमें कोई पुलिसकर्मी भी शायद ही आहत हुआ (बेलूर, 2007; बेलूर, 2010)। इस घातक बल के इस्तेमाल को नागरिक समाज, नेता और मीडिया तक आसानी से स्वीकार कर लेते हैं। मुठभेड़ों को संगठित अपराधों, आतंकवाद और अराजकता के खिलाफ एक प्रतिक्रिया मानी जाती है। 'मुठभेड़ विशेषज्ञ' मीडिया में वाहवाहियां पाते हैं और सरकार उनका समर्थन करती है। कुछ मामलों में 'पुलिस या सशस्त्र बलों के आरोपी अपराधकर्ताओं को समय से पहले पदोन्नतियों, या किसी और पुरस्कार से नवाजा गया है' (ओएचसीएचआर, 2010)। मुंबई के एक पुलिस सब-इंस्पेक्टर ने अपने पूरे कैरियर में कथित तौर पर 50 से अधिक गैंगस्टर्स का मुठभेड़ किया और आन, अब तक छप्पन और कगार समेत कई फिल्मों में इसका महिमामंडन किया गया (गुप्ता, 2003; जौहर, 2010)। पुलिस कमिश्नर एम.एन. सिंह ने ऐसी घटनाओं की तारीफ करते हुए कहा कि इससे संगठित अपराध पर काबू पाया जा सकता है (इंडियन एक्सप्रेस, 2001)। कुछ मामलों में ऐसे मुठभेड़ों को मंजूरी देने में सीनियर अफसरों की भी भूमिका रही। देश की सबसे बड़ी जांच एजेंसी, सेंटरल ब्यूरो ऑफ इन्वेस्टिगेशन को एक संदिग्ध की मौत में गुजरात के गृह मंत्री के शामिल होने के सबूत मिले, और इस मामले में

कई पुलिस अफसरों को जेल भेजा गया (घोग एवं दास, 2007; आउटलुक इंडिया, 2010)।

आश्चर्य नहीं कि अपराध, गैंग, अलगाववाद, उग्रवाद और आतंकवाद से जूझ रहे क्षेत्रों में ही मुठभेड़ की घटनाएं भी बाकी क्षेत्रों से ज्यादा होती हैं, लेकिन आंकड़ों का अभाव किसी तरह की भरोसेमंद तुलना करना असंभव बना देता है। परिस्थितियों की विभिन्नता इसे समझना और मुश्किल बना देती है। मसलन, सत्तर और अस्सी के दशक में उत्तर प्रदेश में डकैतों ने कोहराम मचा रहा था। मुख्यमंत्री के समर्थन से पुलिस ने एक अभियान चलाया जिसमें सैकड़ों लोग मुठभेड़ में मारे गए, जिनमें कई बार निर्दोष भी शामिल रहे (एनपीसी, 1981)। अस्सी के दशक में जब सिख अलगाववादी हिंसा पर उतारू हो गए तो पंजाब में दमन का तरीका और निर्मम रहा। के.पी.एस. गिल के नेतृत्व में पंजाब पुलिस ने आतंकवाद-दमन के नाम पर हजारों लोगों को मौत के घाट उतारा (कुमार और अन्य, 2003)। ये नीति पंजाब से आतंकवाद मिटाने में कामयाब रही, लेकिन 1984 से 1996 के बीच ऐसी घटनाओं में 25,000 लोगों की मौत हुई, जिससे राज्य की कार्रवाई की वैधता पर सवाल उठता है। इस दौरान लोगों की गुमशुदगी, मुठभेड़ों में उनका मारा जाना, अज्ञात के रूप में मृतकों का दाह-संस्कार और पुलिस हिरासत से लोगों का भाग आना आम बात थी (कुमार और अन्य, 2003)।

मुठभेड़ों को भारत में एक बड़ी समस्या

तालिका 5 पुलिस के खिलाफ शिकायतों की संख्या, 2004-2010, जैसा एनसीआरबी को रिपोर्ट किया गया

वर्ष	मिली शिकायतें	अफसरों पर हुई कार्रवाई
2004	51,060	1,191
2005	61,560	9,047
2006	62,882	7,936
2007	51,767	941
2008	48,939	1,132
2009	54,873	1,618
2010	58,438	861

स्रोत: एनसीआरबी, 2011, पृ. 161

के रूप में नहीं देखा जाता। खासकर दिल्ली और मुंबई जैसे बड़े शहरों में न्याय व्यवस्था की अनिश्चितता और देरी का हवाला देते हुए इसे एक सुविचारित रास्ता माना जाता है (बेलूर, 2010, पृ. 71)। रिसर्च दर्शाते हैं कि आमतौर पर सभी अफसर यही मानते हैं कि मुठभेड़ प्रभावी हैं (बेलूर, 2010, पृ. 67-78), और कुछ मामलों को छोड़कर मुठभेड़ों को 'विसामान्य कार्रवाई' नहीं माना गया। जैसा कि पहले कहा गया है, कई मीडिया संस्थान भी अपराधियों और आतंकवाद के संदिग्ध व्यक्तियों के खिलाफ मुठभेड़ के इस्तेमाल की वकालत करते हैं (संघवी, 2010)।

आंकड़े इसका समर्थन करते हैं। एनसीआरबी ने पुलिसकर्मियों के खिलाफ मिलनेवाली शिकायतों और इन मामलों में अफसरों पर लगनेवाले आपराधिक आरोपों की संख्या दर्ज करनी शुरू कर दी है। तालिका 5 में पिछले कुछ सालों के राष्ट्रीय आंकड़े हैं जिनसे पता चलता है कि शिकायतों की तुलना में अफसरों पर होनेवाली कार्रवाई की संख्या कितनी कम है।

पुलिस अफसरों पर होनेवाली कार्रवाई की संख्या में आनेवाले उतार-चढ़ाव (2004 से 2005 तक जो बढ़कर नौ गुणा और फिर 2006 में घटकर इतना कम हो गया) की व्याख्या करना मुश्किल है। हो सकता है, इसकी वजह पुलिस द्वारा की गई रिपोर्टिंग में आए बदलाव हों। अलग-अलग राज्यों में इन संख्याओं में दिखाई देनेवाला अंतर इतना बड़ा है कि इन रुझानों का विश्लेषण और दुरुह हो जाता है। ये तय करना जरूरी है कि दर्ज हुई शिकायतों की ये संख्या स्वीकार्य है या नहीं, और फिर इसपर और शोध करना जरूरी है, क्योंकि अफसरों की संख्या में भारी अंतर है।

पुलिस द्वारा बलप्रयोग पर नियंत्रण के तरीके

ऐसा नहीं कि भारत में पुलिस सत्ता अपनी आलोचनाओं से अनभिज्ञ है, और पुलिस ने ज्यादातर इसका जवाब प्रभावी भीड़ नियंत्रण से देने की कोशिश की है (द हिंदू, 2010)। गृह संकटों में बल के प्रयोग को कम करने के लिए कई तरीके अपनाए

जाने लगे हैं। बेकाबू हुई भीड़ को संभालने के लिए उस स्थान पर नियंत्रण सबसे ज्यादा जरूरी है (वर्मा, 1997, पृ. 74)। ऐसे मामलों में संघर्ष को खत्म करने के लिए अफसरों से रचनात्मक तरीकों और भीड़ पर कम-से-कम बल के इस्तेमाल की उम्मीद की जाती है। हालांकि इसका अंदाजा लगाना मुश्किल है कि रोकथाम के ऐसे तरीके कितने कारगर हैं।

पुलिस में बलप्रयोग को कम करने के लिए कई कोशिश हुई है। इन सुधारों की कोशिश में सबसे बड़ी भूमिका गृह मंत्रालय ने निभाई है। कुछ ऐसे मामले भी हैं जिनमें जांत हुई और दोषी पाए गए पुलिस अफसरों को सजा दी गई (मोहंती, 2011)।

राष्ट्रीय पुलिस आयोग (एनपीसी) की स्थापना 1978 में हुई और पुलिसकर्मियों द्वारा बलप्रयोग के खिलाफ ये पहली व्यवस्थित कोशिश की गई। उस दौरान कुछ राज्यों में डकैती एक गंभीर समस्या हो गई थी और पुलिस गैंगों से निपटने के लिए बड़े स्तर पर कार्रवाई और 'मुठभेड़' का रास्ता अपना रही थी (खान, 1981)। एनपीसी ने डकैतों के अपराधों का विश्लेषण किया और पाया कि जांच और सजा की गति गवाहों को डराने-धमकाने और अदालत की कार्यवाही में आने वाली देरी की वजह से धीमी पड़ रही थी। इसकी वजह से पुलिस दूसरे रास्ते अपना रही थी। मुठभेड़ों का रास्ता इसलिए लिया गया क्योंकि बड़े पैमाने पर ये माना जाने लगा था कि अपराधी सजा से बचने के लिए व्यवस्था का नाजायज फायदा उठा रहे थे।

अपराधियों को सजा दिलाने की जायज कोशिश में एनपीसी ने जमानत उल्लंघन के मामलों में कड़ी सजा जैसे कुछ समाधान सुझाए। अगर ये सुझाव मान लिए जाते तो आतंकवाद और संगठित अपराध जैसे मामलों में मिसाल कायम किए जा सकते थे। एनपीसी ने सुरक्षा कमीशनों के माध्यम से पुलिस की जवाबदेही बढ़ाने और पुलिस को प्रत्यक्ष राजनीतिक दखलअंदाजी से बचाने के लिए भी सुझाव दिए थे। हालांकि इन सुझावों को सरकार ने संभवतः इसलिए नहीं माना क्योंकि नेता पुलिस पर अपना नियंत्रण कम नहीं करना चाहते थे (वर्मा और सुब्रमनियम, 2009)।

1993 में मानवाधिकार कानून के लागू होने के बाद राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (एनएचआरसी) का गठन किया गया जिसका उद्देश्य नागरिकों के मानवाधिकार के हनन के मामलों की बढ़ती शिकायतों से निपटना था। कमीशन को मानवाधिकारों के उल्लंघन के मामले की जांच-पड़ताल, मानवाधिकारों की जागरूकता बढ़ाने और इस कोशिश में सामाजिक संगठनों को साथ लेकर चलने का निर्देश दिया गया। पुलिसकर्मियों द्वारा मानवाधिकार हनन के कई मुद्दों पर एनएचआरसी ने काम किया है। इनमें प्रीवेंटिव डिटेन्शन कानून, उग्रवाद प्रभावित इलाकों में मानवाधिकार सुरक्षा, आपराधिक मामलों में गिरफ्तारी और रोकथाम के लिए राज्य और नगर पुलिस इकाईयों में मानवाधिकार सेल का गठन, और पुलिस हिरासत में मौत, बलात्कार और यंत्रणा के मामलों की रोकथाम शामिल है।



4 अगस्त 2008 को श्रीनगर में प्रदर्शनकारी आसिफ मेहराज की मौत के खिलाफ हो रहे प्रदर्शन के दौरान एक पुलिसकर्मी खुद को पत्थरबाजी से बचाते हुए © तौसीफ मुस्तफा/एएफपी फोटो

एक्सट्राज्युडिशियल और स्वेच्छाचारी सजा के मामले में संयुक्त राष्ट्र के स्पेशल रैपोर्टर ने 'ऐसे देशों की ओर विशेष ध्यान देने को कहा है जहां गैरकानूनी तरीके से मौत के घाट उतारा जाता है। कुछ मामलों में तो पीड़ितों को न्याय दिलाने, हिंसा के चक्र को तोड़ने और एक नई शुरुआत के लिए न्याय के नए पैमाने तय करने की आवश्यकता है' (ओएचसीएचआर, 2012)।

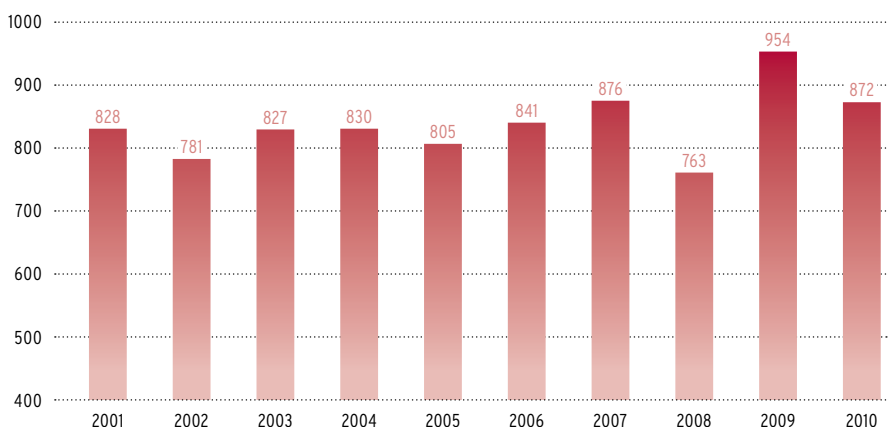
'मूलभूत स्वतंत्रता और मानवाधिकारों का हनन सामाजिक और राजनैतिक उथल-पुथल का कारण बनता है (एनएचआरसी, 2008, पृ. 98)।' पुलिस द्वारा बलप्रयोग दुर्भाग्यवश इन्हीं परिस्थितियों का नतीजा है, जिससे भारतीय समाज में संघर्ष और हिंसा को बढ़ावा मिलता है। आयोग ये भी मानता है कि देश में मानवाधिकारों के हनन के कुछ आम और लगातार सामने आ रहे मामलों में यंत्रणा, संदिग्ध की गुमशुदगी, फर्जी मुठभेड़ों में मौत और पुलिस हिरासत में मौत है।

सुधार की राह

बल का दुरुपयोग भारत की पुलिस व्यवस्था पर गहरी परछाई डालता है। एक लोकतंत्र में पुलिस से नागरिकों को सहयोग और अपनी कार्रवाई के लिए जवाबदेही की उम्मीद की जाती है।

चित्र 1 झूठी पर भारतीय पुलिसवालों की हिंसक मामलों में मौत

स्रोत: एनसीआरबी, 2011, पृ. 567





सितंबर 2006, श्रीनगर में एक प्रदर्शन के दौरान जम्मू-कश्मीर पुलिस की महिला पुलिसकर्मी कश्मीरी महिलाओं को पकड़ते हुए

© एपी फोटो/डार यासिन

लेकिन भारत में सहयोग और जवाबदेही, दोनों अनुपस्थित हैं। पुलिस की छवि ऐसी है कि आम जनता उसपर भरोसा नहीं करती। पुलिस की ज्यादतियों पर रोक के लिए शायद ही कोई कदम उठाया जा रहा है। पुलिस अकादमियों में ऐसे कोर्स की कमी है जिनसे उन्हें कम से कम बलप्रयोग का प्रशिक्षण दिया जा सके। संगठन में पुलिस अफसरों द्वारा संयम को बढ़ावा नहीं दिया जाता। यहां तक कि नेतृत्व में भी मुठभेड़ में मौतों को स्वीकृति, यहां तक कि मंजूरी दी जाती है।

भारतीय पुलिस के सामने हिंसा से निपटने की चुनौतियां अक्सर आ जाया करती हैं, जिनमें जिम्मेदारी का निर्वहन करते हुए जान गंवाने की घटनाएं भी होती हैं (चित्र 1)। इन खतरों में भीड़ का हिंसक हो जाना, संगठित अपराध, उग्रवाद, आतंकवाद और कर्तव्य निभाते हुए हादसों का शिकार होना शामिल है। 2010 में ड्युटी पर 857 पुलिसकर्मीयों की मौत हुई (एनसीआरबी, 2011, पृ. 157)। इसकी तुलना में अमेरिका में, जहां की आबादी भारत की एक चौथाई है, उस साल 157 पुलिसकर्मीयों की मौत हुई और इस तुलना का गहन विश्लेषण अत्यंत आवश्यक है (रॉयटर्स, 2011)।

चूंकि भारत में पुलिस की उपस्थिति आमतौर पर कम है, ऐसा कई बार होता

है कि हालात से निपटने के लिए छोटी संख्या में पहुंचे पुलिसकर्मीयों को उग्र और उत्तेजित भीड़ घर लेती है और ऐसे में भीड़ द्वारा उनपर हमले की घटनाएं भी हुई हैं।

कानून-व्यवस्था बनाए रखने और निर्दोषों की रक्षा के लिए पुलिस को अपना काम करना ही होगा। लेकिन बलप्रयोग भी कानून के दायरे में ही रह कर किया जाए। देश के नेतृत्व को प्रशिक्षण और गंभीर हालातों को निपटने के लिए संसाधन उपलब्ध कराने पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। ऐसी घटनाएं जहां बलप्रयोग, खासकर घातक बलप्रयोग, की आवश्यकता पड़ी है, उनका खासतौर पर निरीक्षण किया जाना चाहिए और उनसे सबक लेना चाहिए। हालांकि ऐसे मामलों में आंकड़ों का अभाव – एनसीआरबी को राज्यों द्वारा भेजे गए अपर्याप्त आंकड़े – और अपराध के आंकड़ों को लेकर व्याप्त उदासीनता दर्शाते हैं कि इनके प्रबंधन को नजरअंदाज किया गया है। इसके लिए नतीजों पर आधारित मेट्रिक्स का विकास और इस्तेमाल आवश्यक है ताकि प्रबंधनसंबंधी निष्पादन का मूल्यांकन किया जा सके (विल्सन, 2006, पृ. 174)।

एनएचआरसी की कोशिशों से सिद्ध हो गया है कि बदलाव मुमकिन है। सौभाग्य से भारत में एक ऐसी सक्रिय न्यायपालिका

है जो नागरिकों के अधिकारों का ध्यान रखती है। मीडिया भी स्वतंत्र है और सरकार से मुखातिब होने के लिए तैयार रहती है। भारत में मानवाधिकारों का समर्थन करनेवाली एक मजबूत लॉबी है जो पुलिस की ज्यादतियों के खिलाफ आवाज उठाती रहती है। लेकिन नतीजे अभी भी आदर्श नहीं हैं।

लेकिन लोकतंत्र का रूप ऐसा है कि कानून व्यवस्था पूरी तरह से लागू हो नहीं पाई। जबतक कुछ सवाल का समाधान नहीं निकलता, पुलिस द्वारा बलप्रयोग अनियंत्रित ही रहेगा। ■

नोट्स

इस इश्यू ब्रीफ को इंडियाना यूनिवर्सिटी, ब्लूमिंगटन, इंडियाना, यूएसए के डिपार्टमेंट ऑफ क्रिमिनल जस्टिस के असोसिएट प्रोफेसर डॉ अरविंद वर्मा ने लिखा। इस विषय के विशेषज्ञों ने इसकी समीक्षा की। सोनल मारवाह ने तथ्यों की जांच की, आंकड़े जुटाए और तालिकाएं बनाईं। कैथरिन एग्वार ने अतिरिक्त शोध किया। पांडुलिपि का संपादन ऐरन कार्प ने किया और प्रूफरीडिंग विड्वी ग्रीन ने किया।

1. मुठभेड़ मौत या हिरासत में मौत पुलिस के साथ 'मुठभेड़' में होनेवाली न्यायेतर मौतों (एक्सट्राजुडिशियल किलिंग्स) को परिभाषित करती हैं, जो अक्सर 'फर्जी' होती हैं, और अक्सर 'मनमाने ढंग से किए गए न्याय' के मामले होती हैं।

- गुज्जर समुदाय ने, जिनकी आबादी का बड़ा हिस्सा राजस्थान में है, आरक्षण के समर्थन में हिंसक प्रदर्शन किए, ताकि सरकारी नौकरियों और शैक्षणिक संस्थानों में वे आरक्षण के हकदार हो सकें। सरकार ने इनकी मांगों के आगे घुटने टेक लिए।
- 1978-1991 में एक अफसर के तौर पर अपनी सेवा के दौरान लेखक का अवलोकन।
- 1978-1991 में एक अफसर के तौर पर अपनी सेवा के दौरान लेखक का अवलोकन।
- मार्च 2012 में यूएन स्पेशल रेपोर्तियोर क्रिस्टोफ हायन्स ने रिपोर्ट में लिखा कि 'संवैधानिक गारंटी और मजबूत मानवाधिकार न्यायशास्त्र के बावजूद भारत में न्यायेतर मौत गंभीर चिंता का विषय है' (ओएचसीएचआर, 2012)।

ग्रंथ-सूची

- एआईआर (ऑल इंडिया रिपोर्टर). 1950. मध्य भारत 83, क्रिमिनल मिसलेनियस, वॉल्युम 37, संख्या 25, मई.
- अस्थाना, एन. सी. एंड अंजलि निर्मल. 2010. 'ग्रे एरियाज इन द लॉ रिलेटिंग टू द यूज ऑफ फोर्स इन डिस्पर्सिंग एन अनलॉफुल असेम्बली' IndLawnews.com. 20 मार्च.
- ऑस्टिन, ग्रैनविल. 1999. वर्किंग ऑफ अ डेमोक्रेटिक कॉन्स्टीट्यूशन: द इंडियन एक्सपीरियंस. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- बद्री-महाराज, संजय, 2001. 'सिविल डिफेंस केपेबिलिटीज ऑफ द इंडियन स्टेट' भारत रक्षक मॉनिटर, वॉ. 4, सं. 2 (सितंबर-अक्टूबर).
- बेलूर, ज्योति 2007. 'पुलिस यूज ऑफ डेडली फोर्सरू एनालाइजिंग पुलिस "एन्काउंटेर्स" इन मुंबई.' अप्रकाशित पीएचडी थीसिस, डिपार्टमेंट ऑफ सोशियॉलोजी, लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स।
- बीएसएफए (बॉर्डर सेक्योरिटी फोर्स अकादमी). 2012. बॉर्डर सेक्योरिटी फोर्स अकादमी. <<http://acy-bsf-gov-in/>>
- ब्युक, एम.एन. 2007. 'नंदीग्राम: लॉ एंड ऑर्डर.' Boloji-com 16 अप्रैल.
- सीएचआरआई (कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव). 2011. पुलिस रिफॉर्म डिबेट्स इन इंडिया. नई दिल्ली: कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव.
- सीएलजे (क्रिमिनल लॉ जर्नल). 1979. 'करम सिंह बनाम हरदयाल सिंह.' क्रिमिनल लॉ जर्नल, पृ. 1211.
- दास, दिलीप के. एंड अरविंद वर्मा. 1998. 'द आर्म्ड पुलिस इन द ब्रिटिश कलोनियल ट्रेडिशन: द इंडियन परस्पेक्टिव.' पुलिसिंग: एन इंटरनेशनल जर्नल ऑफ पुलिस स्ट्रैटेजिज एंड मैनेजमेंट, वॉल्युम 21, सं. 2, पृ. 354-67.
- झोर, आई. ई. 2007. 'परसेप्शन ऑफ रिस्क एंड द डिशिजन टू यूज फोर्स' पुलिसिंग: ए जर्नल ऑफ पॉलिसी एंड प्रैक्टिस, वॉल्युम 1, सं. 3, पृ. 265-72.
- एन्जेल, आर. एस. 2008. 'पुलिस यूज ऑफ नॉन-लीथल फोर्स.' क्रिमिनॉलोजी एंड पब्लिक पॉलिसी, वॉल्युम 7, सं. 4, पृ. 557-627.

- एक्सप्रेस न्यूज सर्विस. 2009. 'लॉयर्स वॉयस ऑपोजिशन टू सीआरपीसी अमेन्डमेंट बिल' 20 जनवरी.
- घोगे, केतकी एंड रतिन दास. 2007. 'फेक एन्क. 'उंटर: हाउ सोहराबुद्दीन शेख वॉज किलड' हिंदुस्तान टाइम्स. 2 मई.
- भारत सरकार. 2010ए. इंडिया एट ए ग्लांस. —. 2010बी. भारत का संविधान
- ग्रिफिथ्स, पर्सिवल. 1971. टू गार्ड माई पीपल: द हिस्ट्री ऑफ द इंडियन पुलिस. लंदन: अर्नेस्ट बेन लिमिटेड.
- गुप्ता, आनंदस्वरूप. 1979. द पुलिस इन ब्रिटिश इंडिया: 1861-1947. नई दिल्ली: कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी.
- गुप्ता, ओम प्रकाश. 1949. 'इन द हाई कोर्ट ऑफ मद्रास.' क्रिमिनल लॉ जर्नल, वॉल्युम 143, 1949-62-LW394ए 1MLJ554, 28 फरवरी.
- गुप्ता, पारुल. 2003. 'अब तक पांच एंड स्टिल काउंटिंग' टाइम्स ऑफ इंडिया, 21 अक्टूबर.
- एचआरडब्ल्यू (ह्यूमन राइट्स वॉच). 2009. ब्रोकेन सिस्टम डिस्फंक्शन, वायलेंस एंड इम्प्युनिटी इन इंडिया पुलिस. लंदन.
- हंटर, डब्ल्यू. डब्ल्यू. (संपादित). 1907. इम्पेरिल गैजेटियर ऑफ इंडिया, भाग IV (प्रशासनिक), पुनर्मुद्रण 1909. ऑक्सफोर्ड क्लैरेन्डन प्रेस.
- आईआईएसएस. 2011. द मिलिट्री बैलेंस. लंदन: इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर स्ट्रैटेजिक स्टडिज
- India e.news-com. 2008. 'बिहार ऑफिशियल्स प्रोटेस्ट ब्लेम फॉर पुलिस फायरिंग' 21 जनवरी.
- इंडियन एक्सप्रेस. 2001. 'मुंबई पुलिस पैट्स इटस. 'ल्फ एज एन्काउंटर डेथ्स डबल' 29 दिसंबर.
- इंडियाटाईम. 2007. 'पुलिस क्लैलिटी इन इंडिया' 26 मई. <<http://www-indiatime-com/2007/05/26/olice&brutality&in&india/>>
- जोहर, सुहेल 2010. 'सुपरकॉप दया नायक, सब्जेक्ट ऑफ थ्री फिल्म्स' SmashHits.COM. 7 सितंबर.
- खान, एम. जेड. 1981. डकैती इन चंबल वैली. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस.
- क्लॉकर्स, सी. बी. 1985. द आईडिया ऑफ पुलिस. बेवरीली हिल्स: सेज पब्लिकेशन्स.
- कोहली, अनिल, ऐरन कार्प एवं सोनल मारवाह. 2011. 'भारत में घातक बंदूकों का भूगोल.' मैपिंग मर्डर: भारत में घातक बंदूकों का भूगोल; आईएवीए इश्यू ब्रीफ 2. नई दिल्ली: भारतीय सशस्त्र हिंसा आकलन एवं जिनीवा: स्मॉल आर्म्स सर्वे. सितंबर.
- कोहली, अतुल. 1990. डेमोक्रेसी एंड डिस्कॉन्टेंट: इंडियाज प्रोग्रेंड क्राइसिस ऑफ गर्वनेबिलिटी. न्यू यॉर्क: केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
- कुमार, राम नारायण, अमरीक सिंह, अशोक अग्रवाल एंड जसकरण कौर. 2003. रेड्युस्ड टू एशेज: द इन्सर्जेसी एंड ह्यूमन राइट्स इन पंजाब. काठमांडू: साउथ एशिया फोरम फॉर ह्यूमन राइट्स.

- कुमार, विनोद. 2009. पब्लिक इन्वेन्ट्स, पुलिस रेस्पॉन्स एंड डेमोक्रेटिक डिस्कॉर्स इन इंडिया—एन एम्पेरिकल स्टडी. अप्रकाशित पीएचडी थीसिस, ब्लूमिंगटन: इंडियाना यूनिवर्सिटी.
- कुमार, विनोद एंड अरविंद वर्मा. 2008. 'हेगेमनी, डिस्प्लिन एंड कंट्रोल इन द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ क्रिमिनल जस्टिस इन कलोनियल इंडिया.' एशियन जर्नल ऑफ क्रिमिनॉलोजी, वॉल्युम 4, पृ. 61-78.
- मैनिंग, पीटर. 2010. डेमोक्रेटिक पुलिसिंग इन ए चेन्जिंग वर्ल्ड. बोल्डर, कोलोरेडो: पैराडाइम पब्लिशर्स, पृ. 3-38.
- माथुर, कुलदीप. 1992. 'द स्टेट एंड द यूज ऑफ कोअर्सिव पावर इन इंडिया.' एशियन सर्वे, वॉल्युम 32, संख्या 4, पृ. 337-49.
- मेटकाफ, थॉमस आर. 1994. द न्यू केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया:आईडियालॉजि ऑफ द राज. बर्कले: कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी प्रेस.
- मित्रा, दुर्गा माधव. 2007. अंडरस्टैंडिंग इंडियन इन्सर्जेन्सिज: इम्प्लिकेशन्स फॉर का. उंटरइन्सर्जेसी ऑपरेशन्स इन द थर्ड वर्ल्ड. कार्लाइल, पेनसिल्वेनिया: यूएस आर्मी स्ट्रैटेजिक स्टडीज इंस्टीट्यूट. फरवरी.
- मोहन, सौमित्र. 2008. गार्डिंग अगेन्स्ट पुलिस क्लैलिटी. नई दिल्ली: इंस्टीट्यूट ऑफ पीस एंड कॉन्फ्लिक्ट स्टडीज.
- मुखर्जी, दोएल. 2003. 'पुलिस रिफॉर्म इनिशिएटिव्स इन इंडिया' अप्रकाशित पेपर। अनपब्लिशड पेपर. नई दिल्ली: कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव, 2 जुलाई.
- एनसीआरबी (नेशनल क्राइम रिपोर्ट्स ब्यूरो). 2006. एनुअल क्राइम इन इंडिया - 2006. फरीदाबाद: भारत सरकार प्रेस.
- 2011. क्राइम इन इंडिया, 2007-2008. फरीदाबाद: भारत सरकार प्रेस.
- एनएचआरसी (राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग). 2008. वार्षिक रिपोर्ट 2006-07. नई दिल्ली: राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग.
- एनपीसी (राष्ट्रीय पुलिस आयोग). 1981. पांचवां रिपोर्ट. नई दिल्ली: राष्ट्रीय पुलिस आयोग.
- आउटलुक इंडिया. 2010. 'फेक एन्काउंटर: गुजरात होम मिनिस्टर फेल्स टू अपियर बिफोर सीबीआई.' 24 जुलाई.
- पाटिल, संजय. 2008. पयूडल फोर्ससरू रिफॉर्म डिबेट - मूविंग फ्रॉम फोर्स टू सर्विस इन साउथ एशियन पुलिस. नई दिल्ली: कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट्स इनिशिएटिव.
- रतनलाल एंड धीरजलाल. 2006. द कमेन्ट्री ऑन द कोड ऑफ क्रिमिनल प्रोसिज्यर, 18वां संस्करण. वॉल्युम 1 एवं 2. नई दिल्ली: लेक्सिसनेक्सिस बटरवर्थ्स
- रिडीफ न्यूज (नई दिल्ली). 2010. 'बंद: ऑपोजिशन पयूल्स पब्लिक एन्स्ट आ. 'वर प्राइस हाईक.' 5 जुलाई. <<http://news-rediff-com/report/2010/jul/05/bandh&chokes&bharat-htm>>
- रॉयटर्स. 2011. 'यू.एस. पुलिस फेटलिटीज अप इन 2011: रिपोर्ट.' 28 दिसंबर.

संघवी, वीर. 2010. 'इट्स टाइम टू ओपन डिबेट ऑन कवर्ट ऑपरेशन्स' हिंदुस्तान टाइम्स, 20 फरवरी.

सक्सेन, एन.एस. 1997. 'फेक एन्काउंटर्स ऑफ द ऑफिशियल काइंड.' टाइम्स ऑफ इंडिया. 19 जून.

सेमिनार. 1999. पुलिससंघीक: ए सिंपोजियम ऑन द रोल ऑफ द पुलिस इन आवर सोसा. इटी, इश्यू 483. नवंबर. <<http://www-india&seminar-com/semframe.html>>

शाह, घनश्याम. 2002. 'इंट्रोडक्शन.' घनश्याम शाह के संपादकीय सोशल मूवमेन्ट्स एंड द स्टेट. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स, पृ. 13-31.

सिफी न्यूज (नई दिल्ली). 2008. 'गुज्जर्स डेड ब्रीद लाइफ प्रोटेस्ट.' 27 मई.

स्वामी, प्रवीण. 2010. 'द अगली वर्ल्ड ऑफ कश्मीर्स ऑनलाइन रेवेल्स.' द हिंदू (मद्रास), 24 जुलाई.

टेलीग्राफ (नई दिल्ली). 2010. 'कॉप फायरिंग एट स्कूल, गार्डियन किल्ड.' 30 जुलाई.

टाइम्स ऑफ इंडिया. 2010. 'पुलिस स्टेट: टेरर इन यूनिफॉर्म.' 16 जनवरी.

यूएनडीपी (यूनाइटेड नेशन्स डेवलपमेंट प्रोग्राम). 2010. ह्यूमन डेवलपमेंट इन्डाइसेस - अ स्टैटिस्टिकल अपडेट 2008, पृ. 35.

वर्मा, अरविंद. 1997. 'मेनेजिंग लॉ एंड ऑर्डर इन इंडिया: एन एक्सरसाइज इन पुलिस डिस्क्रीशन.' इंटरनेशनल क्रिमिनल जस्टिस रिव्यू, वॉल्युम 7, पृ. 65-80.

— 1999. 'कल्चरल रुट्स ऑफ पुलिस करप्शन इन इंडिया.' पुलिसिंग: एन इंटरनेशनल जर्नल ऑफ पुलिस स्ट्रैटेजिस एंड मैनेजमेंट, वॉल्युम 22, नंबर 3, पृ. 264-78.

— 2007. 'अनैटॉमी ऑफ रायट्स: अ सिचुएशनल प्रीवेन्शन अप्रोच.' क्राइम प्रीवेन्शन एंड कम्युनिटी सेफटी, वॉल्युम. 9, सं. 3, पृ. 201-21.

वर्मा, अरविंद एंड के. एस. सुब्रमनियम. 2009. अंडरस्टैंडिंग द पुलिस इन इंडिया. नई दिल्ली: लेक्सिसनेक्सिस बटरवर्थ्स.

विल्सन, जॉर्ज, रॉजर डनहम एंड जेफ्री एल्पर्ट. 2004. 'प्रेज्युडिस इन पुलिस प्रोफाइलिंग: असेसिंग एन ओवरलुक आस्पेक्ट इन प्रायर रिसर्च.' अमेरिकन बिहेवियरल साइंटिस्ट, वॉल्युम 47, No. 7, पृ. 896-909.

विल्सन, जेरेमी एम 2006. 'लॉ एंड ऑर्डर इन एन इमरजिंग डेमोक्रेसी: लेसन्स फ्रॉम द रिकन्स्ट्रक्शन ऑफ कोसोवोज पुलिस एंड जस्टिस सिस्टम्स'. अमेरिकन एकेडमी ऑफ पोलिटिकल एंड सोशल साइंसेज, वॉल्युम 605, नंबर 1, पृ. 152-77.

भारतीय सशस्त्र हिंसा आकलन के विषय में

भारतीय सशस्त्र हिंसा आकलन (इंडियन आर्म्ड वायलेंस असेसमेंट या IAVA) रिसर्च को बढ़ावा देता है और सशस्त्र हिंसा के कारणों और निष्कर्षों को समर्पित भारतीय समाज-शास्त्र शोध समुदायों को शोध के लिए प्रोत्साहित करता है। भारतीय सहयोगियों के साथ मिलकर तैयार किया गया ये समूह सुरक्षा के विभिन्न कारकों, हिस्सेदारों और सक्षम संस्थानों से जुड़े विभिन्न मुद्दों की खोज करता है। आईएवीए का मकसद भारत में इन मुद्दों पर साक्ष्य-आधारित बहस छेड़ना और वैश्विक नीतियों और कार्यक्रमों में सक्रिय योगदान को आगे बढ़ाना है। इस प्रोजेक्ट को स्मॉल आर्म्स सर्वे का समर्थन प्राप्त है।

आईएवीए के विषय विवरण या इश्यू ब्रीफ सशस्त्र हिंसा से जुड़े मुख्य प्रसंगों पर जानकारियों की स्थिति का जायजा लेते हैं। स्मॉल आर्म्स सर्वे द्वारा कमीशन किए गए ये विषय विवरण संघर्ष और अपराध से जुड़ी हिंसा, अपराध करनेवालों और अपराध के शिकार लोगों के विषय में, किसी खास किस्म की हिंसा को रोकने और कम करने के लिए रणनीतियों से जुड़े महत्वपूर्ण निष्कर्षों का सार हैं। इन्हें तैयार करते हुए सशस्त्र हिंसा के पैमाने और रूपों तथा उसकी उग्रता, उसके कारणों और जवाबी नीतियों के प्रभाव से जुड़े शोध पर ध्यान दिया जाता है, और ये शोध आकड़ों पर आधारित होते हैं।

आईएवीए विषय विवरण अंग्रेजी और हिंदी में उपलब्ध है। इन्हें www.smallarmssurveyindia.org से भी डाउनलोड किया जा सकता है। इसकी प्रिंट कॉपियां स्मॉल आर्म्स सर्वे से प्राप्त की जा सकती हैं।

क्रेडिट

अनुवादक: अनु सिंह

पूफरीडर: शमशेर सिंह

डिजाइन एंड लेआउट: फ्रैंक बी जंगहैन्स (fbj@raumfisch.de)

संपर्क का पता

सोनल मारवाह, प्रोजेक्ट कॉऑर्डिनेटर: sonal.marwah@smallarmssurvey.org

ऐरॉन कार्प, आईएवीए सीनियर कन्सल्टेंट: akarp@odu.edu

इंडियन आर्म्ड वायलेंस असेसमेंट

ईपी-16/17, चंद्रगुप्त मार्ग

चाणक्यपुरी

नई दिल्ली - 110021

स्मॉल आर्म्स सर्वे

47 एवेन्यू ब्लॉक 1202 जिनिवा स्विटजरलैंड

टेलीफोन: 41 22 9085777 फैक्स: 41 22 7322738



India
Armed Violence
Assessment

A project of the Small Arms Survey



small
arms
survey

